विपश्यना

[साधकों का मासिक प्रेरणापत्र]

रजि. नं. १९१५६/७१
पोस्टल रजि. नं. NSM-16/83

वर्ष १३ • बम्बई • बुद्धवर्ष २५२७ • आश्विन पूर्णिमा [शक] • दि. २१-१०-१९८३ • अंक ४

संवेदना

(४)

काया पर होनेवाली संवेदना चाहे सुखद हो या दुखद, जब हम उसके सुख-दुखको भोगना छोड़कर, उसे तटस्थभावसे देखनेका उपक्रम शुरू करते हैं, तो अनेक सच्चाइयां अपने आप प्रकट होने लगती हैं।

एक तो यह कि स्पर्श होता है तो ही काया पर संवेदना जागती है। आंखसे रूपका, कानसे शब्दका, नाकसे गंधका, जीभसे रसका, कायासे किसी स्पर्शव्य पदार्थका और मनसे चिंतनका अथवा शरीरका स्पर्श होता है तो संवेदना जागती है। यह निसर्गका अटूट नियम है। साधक इस तथ्यको विपश्यना साधना करते हुए अनुभूतियोंके स्तर पर बखूबी जानने लगता है।

विपश्यना करते हुए इन संवेदनाओंको साक्षीभावसे देखते रहनेका प्रयास करते रहने पर भी मनके पुराने स्वभावके कारण, साधक बहुधा, साक्षीभावको भूलकर फिर भोक्ताभावमें डूब जाता है। थोड़ी देरके लिए ही सिर पानीके ऊपर उठता है, परन्तु फिर पानीके नीचे चला जाता है और अदृष्य बहावमें बहने लगता है। यदा-कदा फिर पानीके ऊपर सिर उठता है परन्तु शीघ्र ही फिर पानी के नीचे डूबकर बहावमें बहने लगता है! यों बार-बारके अनुभवसे यह स्पष्ट हो जाता है कि मन भोक्ताभावका आदी है, संवेदनाओंका रसास्वादन करनेका आदी है। दुखद हो तो दुख का आस्वादन, सुखद हो तो सुख का आस्वादन करता रहता है।

मन के इस स्वभावका बार-बार निरीक्षण करने पर साधक आस्वादनके आदिनवको याने दुष्परिणामको, खतरेको भी समझने लगता है। हर आस्वादन राग अथवा द्वेष पैदा करता है जिससे कि संवेदनाएं अधिक तीव्र होती हैं। परिणाम स्वरूप और अधिक राग द्वेष पैदा होता है। यों दुख का कुचक्र चल पड़ता है। यही दुख-समुदय गामिनी प्रतिपदा है। साधक यह बखूबी जान लेता है कि इस प्रतिपदा पर याने इस मार्ग पर चलते-चलते वह चिरकालसे दुख-संवर्धन ही करता रहा है।

अब इस आस्वादनमय भोक्ताभावको छोड़कर उपेक्षाभावमें, तटस्थभावमें स्थित होता है तो देखता है कि दुखका यह कुचक्र रुका है; दुख-निरोध हुआ है। सचमुच यही दुख-निरोधगामिनी प्रतिपदा है।

अतः उसे यह सच्चाई स्पष्ट होती है कि शरीर पर होनेवाली संवेदना एक ऐसा जन्कशन है जिससे दो रास्ते फूटते हैं। एक दुख-समुदयगामिनी प्रतिपदा और दूसरी दुख-निरोधगामिनी प्रतिपदा।

यह दोनों आर्यसत्य जब स्वानुभूतियोंके स्तर पर समझमें आने लगते हैं तो साधक अत्यंत सजग रहता हुआ समुदयगामिनी प्रतिपदा को त्यागता है और निरोधगामिनी प्रतिपदा पर बढ़ने लगता है। इस प्रकार द्रष्टाभावकी विपश्यना करता हुआ इन संवेदनाओंके आधार पर राग द्वेषकी प्रतिक्रिया करनेवाले स्वभावसे निस्सरण करता है, निकलता है।

साधनाकी प्रारंभिक अवस्थाओं में साधकका सिर अधिकांशतः पानीके नीचे रहता है। पर अभ्यास करते-करते सिर अधिक समय पानीके ऊपर रहने लगता है। तटस्थभाव पुष्ट होने लगता है। नए राग-द्वेष बनने बन्द होने लगते हैं और पुरानोंका क्षय होने लगता है और फलतः साधक निरोध समापत्तिकी अवस्था पर पहुँचकर इंद्रियातीत निर्वाणिक स्थितिकी अनुभूति कर लेता है। साधना करता हुआ जितनी देर इस निर्वाणिक अवस्थामें रहता है उतनी देर नाम और रूपका विच्छेद रहता है याने शरीर और चित्तका संपर्क टूटा रहता है। अतः उन दोनों के स्पर्श से होनेवाली संवेदनाओं का निरोध हुआ रहता है। यह निर्वाण अवस्था इंद्रियातीत होनेके कारण उस समय छहों

धम्म वाणी

समाहितो सम्पजानो, सतो बुद्धस्स सावको,
वेदना च पजानाति, वेदनानं च सम्भवं।
यत्थ चेता निरुज्झन्ति, मग्गं च खयगामिनं,
वेदनानं खया भिक्खु, निच्छातो परिनिब्बुतो॥

–संयुत्तनिकाय–वेदना संयुत्त.

भगवान बुद्धका वह श्रावक-साधक जो समाधिस्थ है, सजग है, सच्चाई को प्रज्ञापूर्वक संपूर्णतया जाननेवाला है। वह शारीरिक संवेदनाओंको भली प्रकार जानता है; उनकी उत्पत्तिको जानता है; और जहाँ संवेदनाएँ निरुद्ध हो जाती हैं उसे जानता है, संवेदनाओंके क्षयगामी मार्ग को भी जानता है। जिस साधकने संवेदनाओं का क्षय कर लिया वह तृष्णाओंसे विमुक्त हुआ, परिनिर्वाणको प्राप्त हुआ।

इंद्रियां काम करना बंद कर देती हैं। परिणाम स्वरूप इन इंद्रियों पर अपने-अपने विषयोंके स्पर्श से होनेवाली संवेदना निरुद्ध हो जाती है।

यों साधक संवेदनाओंके आस्वादन करनेवाले स्वभावसे निस्तरण करता हुआ संवेदनाओंके प्रति साक्षीभाव पुष्ट कर उस अवस्था तक जा पहुँचता है जहाँ संवेदनाओं का ही नितांत निरोध हो जाता है और इस प्रकार दुःखोंका नितांत निरोध हो जाता है। भव-चक्र टूट जाता है।

आओ साधको! हम भी इस प्रकार लगनसे, परिश्रमसे, निष्ठासे, पुरुषार्थ से दुख-समुदयगामिनी प्रतिपदाका परित्याग करते हुए, दुःख-निरोधगामिनी प्रतिपदा का प्रतिपादन करें और अपना मंगल साध लें, कल्याण साध लें!

कल्याण मित्र,
स. ना. गो.

मैं विपश्यना शिविरमें सम्मिलित हुआ।

१– शिविरमें सम्मिलित होनेका उद्देश्य।

मैं ७७ वर्षका बूढ़ा हूं। अपनी युवावस्था में मैंने सेनामें काम किया है। जन्म और मृत्युके परेकी अवस्थाका साक्षात्कार करनेके लिए मैंने भगवान बुद्धकी शिक्षाकी शरण ग्रहण की। भगवान बुद्ध के वास्तविक मार्गकी खोज मुझे सन् १९२३ से ही थी।

सन् १९४५ में, जबकि दूसरा विश्वयुद्ध हुआ तो धर्मके प्रति मेरी श्रद्धा और गहरी हुई। इस युद्धमें जो लोग मृत्युको प्राप्त हुए उनके प्रति अपनी सद्भावना और विश्वशांतिकी खोजके लिए मैं सदा ऐसे अवसरोंको ढूंढते रहता था जहां कि मुझे भगवान बुद्धके बताए हुए मार्ग का व्यावहारिक अभ्यास करनेका अवसर मिल सके। और सन् १९८२ में मुझे महसूस हुआ कि मैं अब भगवान बुद्ध और उनके द्वारा सिखाए हुए धर्मको थोड़ा-बहुत समझ पाया हूं। इसके पहले मैंने कभी धर्मका अभ्यास नहीं किया लेकिन चाहता अवश्य था कि कोई प्रयोग करके देखूं। जब मुझे ऐसा अवसर मिला तो मैंने समझा कि यह मेरे जीवनमें बहुत महत्वपूर्ण अवसर है और इसलिए बहुत दृढ़ निश्चयके साथ मैंने इस शिविरमें सम्मिलित होनेका निर्णय किया। एक बार मेरी बढ़ी हुई उम्र की वजहसे मनमें जरा झिझक अवश्य हुई। लेकिन फिर सोचा मुझे सब कुछ प्रकृति पर छोड़ देना चाहिए और शांत व निश्चिंत चित्तसे समता और पवित्रताकी भावनासे मुझे शिविरमें शामिल हो जाना चाहिए।

२– यह साधना कैसी थी?

मेरे लिए तो यह जीवनका पहला और बहुत ही अद्भुत अनुभव था। मैंने देखा कि मेरा शरीर और मन दोनों ही निर्मल हो उठे हैं और मुझे मेरे भीतर बहुत गहरी ताजगी महसूस हुई। मेरे अभ्यासके अनुभवोंका विवरण इस प्रकार है :–

(क) "शिविरके सभी शीलोंको, नियमोंको और समय-सारिणीके प्रतिबंधित वातावरणको स्वीकार करनेमें मुझे जरा भी हिचकिचाहट नहीं हुई। मैंने अपने आपको शिविरकी जीवन-पद्धतिसे समरस कर लिया और प्रारंभ से अंत तक बहुत सुख महसूस करता रहा। संभवतः यह इसलिए हो सका कि शिविर आरंभ करनेके पहले मैंने यह दृढ़ निश्चय किया था कि मुझे यह शिविर लेना ही है, चाहे जितनी कठिनाइयोंका सामना करना पड़े।

(ख) हमें यह आदेश दिया गया कि अपने सांसको और स्थूल तथा सूक्ष्म संवेदनाओं को जैसी हैं वैसी साक्षीभावसे देखें। एक बार तो इसे सुनकर मनमें जरा शंका हुई कि क्या ऐसा कर सकना संभव होगा? प्रारंभिक अवस्था में बहुत प्रयत्न करने पर भी मुझे कोई संवेदना नहीं महसूस हो रही थी तो एक विचार मनमें उठता था कि मेरी बढ़ी हुई उम्र की वजह से मेरे शरीरकी संवेदनाएं बहुत मंद पड़ गयी हैं।

कभी कभी मैं बौद्धिक स्तर पर चिंतन करने लगता कि क्या संवेदनाएं इस प्रकारकी होंगी या उस प्रकार की होंगी। लेकिन यह तो परिश्रम करनेका काम था। गलतियां करते-करते और पुरुषार्थ करते-करते यह बात समझ में आने लगी कि इस प्रकार की निराशाके विचार मेरे लिए हानिकारक हैं। इनसे कोई लाभ नहीं होगा।

तीसरा दिन होते-होते मेरा मन शांत और संतुलित होने लगा। मेरी एकाग्रता सूक्ष्म होने लगी और मैं कुछ-कुछ संवेदनाएं अनुभव करने लगा, यद्यपि बहुत मंद थीं।

पांचवे दिन मैं ऐसी अवस्था पर पहुँचा जब मेरा सांस बहुत ही सूक्ष्म हो गया और स्थिर हो गया और मेरा मन अत्यंत शांत और प्रश्रब्ध हो गया। साधना में किसी प्रकारका प्रतिरोध नहीं हो रहा था। इस अनुभूति से मेरी आंखोमें खुशियोंके आंसू बहने लगे। मेरे जीवनमें इस प्रकारकी पहली अनुभूति थी।

३– पांचवे दिनसे हमें यह शिक्षा दी गयी कि अपने मनको सिर के सिरेसे पांवकी अंगुलियों तक अंग-प्रत्यंगमेंसे गुजारते हुए होनेवाली संवेदनाओंको समताभावसे देखें। अब साधना-विधि मेरी समझ में आने लगी और मैं अधिक प्रयत्न करने लगा। यद्यपि १० वां दिन पूरा होने पर मैंने ऐसा महसूस किया कि आत्म-विमुक्ति और आत्म विशुद्धिका मार्ग बहुत लंबा है। मैंने तो वस्तुतः अभी पहला कदम ही उठाया है। मुझे यह महसूस होने लगा कि अब मुझे इस साधना-विधिका निरंतर अभ्यास करना ही चाहिए।

४– साधना कक्षकी पवित्रता :–

जब मैंने साधना-कक्षमें प्रवेश किया तो श्री गोयन्काजीके चारों ओर बहुत प्रशांत प्रकाश देखा, जिसकी वजहसे सारे वातावरणमें शांति छायी हुई थीं। और फिर गोयन्काजीके शब्दोंकी तरंगें चारों ओर संतुलन और शांति भर रही थीं। जब उनकी धर्म-तरंगें मुझे लगीं तो तत्काल मुझे सारा शरीर बिल्कुल हल्का लगने लगा जैसे मैं बिल्कुल हवामें उठ गया हूँ।

पांचवे दिन गंभीर साधना करते हुए मुझे लगा कि मैं एक बहुत प्रशांत लोकमें पहुँच गया हूं और वहाँ मैंने एक चैत्यका दर्शन किया। दसवें दिन शिविर-समापन पर विपश्यना विश्व विद्यापीठके बारेमें एक पत्रक दिया गया तो मुझे यह देखकर अत्यंत आश्चर्य हुआ कि पांचवे दिनके ध्यानमें मैंने जिस चैत्य के दर्शन किए थे वह बिल्कुल इस ध्यान चैत्यका ही चित्र था। इस रहस्यपूर्ण घटनासे मैं चकित रह गया।

५– अन्य :–

(क) दुनिया भरके एक सौ पुरुष और महिलाएं इस शिविरमें शामिल हुए थे जो कि एक ही लक्ष्यसे काम कर रहे थे और साथ रह रहे थे,

इसे देखकर मेरी आंखोंके सामने एक बहुत ऊंचे आदर्शकी तस्वीर आयी। सारा संसार एक है। संसारके सारे प्राणी परस्पर भाई हैं। इसेसीमा के इस छोटेसे गांवमें यह सत्य प्रकाशित हुआ है। यह आदर्श स्थिति सारे संसारमें फैले तो धर्मका साम्राज्य स्थापित होगा और सर्वत्र शांति विराजेगी। लेकिन ऐसा कब होगा?

(ख) शिविरका कुलखर्च उन पुराने साधकोंके दान द्वारा वहन किया गया जिन्होंने कि पहले ऐसा कोई शिविर लिया था। जब मुझे इस बातकी जानकारी हुई तो इस कल्याणकारी अद्‌भुत भावनाका मेरे मन पर बहुत गहरा असर हुआ। इस नियम द्वारा अमीर गरीब कोई भी ऐसे शिविरमें शामिल हो सकता है। मैं प्रार्थना करता हूं कि धर्मकी यह शुद्धता आगे बढ़ती रहे और धर्म-चक्र निर्बाध प्रवर्तित होता रहे।

(ग) इस साधना-शिविरसे मेरे जीवनका एक नया अध्याय आरंभ हुआ। पहला लाभ तो यह हुआ कि धूम्रपानसे छुटकारा पानेके लिए मैं पिछले पचास वर्षोंसे प्रयत्न कर रहा था उसे मैंने इतनी सरलतासे छोड़ दिया। इस शिविरने सचमुच मेरे जीवनमें एक क्रांति पैदा की है।

(घ) सारा शिविर इतनी शांतिपूर्वक चला और इसके ऐसे अद्‌भुत कल्याणकारी परिणाम आए, इसका सारा श्रेय श्री गोयन्काजी और प्रबंध करनेवाले लोगोंकी निःस्वार्थ सेवा और समुचित देखभालके कारण हो सका। मैं उन सबके प्रति अपनी गहरी कृतज्ञता व्यक्त करता हूं।

श्री सीजूमा मात्सू मोरा, जापान, १९८२.
(श्री मात्सूमोरा पिछले विश्व युद्ध में जपानी सेना के एक वरिष्ठ सेनापति रह चुके हैं और नेताजी सुभाष चंद्र बोस के संपर्क में रहे हैं। सं.)

साधकोंके उद्‌गार

मैंने योगका जो थोड़ा-बहुत अभ्यास किया, उसने मेरा मन ध्यान-साधनाकी ओर खींचा। मैंने ध्यान-साधनाका थोड़ा-बहुत अभ्यास भी किया। जिस ज़ेन सदृश साधनाका मैंने अभ्यास किया, उससे थोड़ा सा मन शांत हुआ। कुछ एकाग्रता भी आयी। मुझे विपश्यना के संबंधमें पहले कोई जानकारी नहीं थी। लेकिन जब सुना तो इस विधिके बारेमें मनमें जरा भी भय अथवा संदेह नहीं जागा। एक चिंता जरा सी देरके लिए जागी कि यदि मैं भीतरसे शून्य हो जाऊंगी तो अपने आपको कैसे नियंत्रित रख सकूँगी? लेकिन एक शिविर पूरा करनेके बाद तो अब बात बिल्कुल समझमें आ गयी। यह साधना अपने आपका नियंत्रण खोनेके लिए नहीं है। यह तो अपने आप पर पूरा आधिपत्य रखते हुए क्षण-क्षण की यथाभूत सच्चाईको शांतिपूर्वक साक्षीभावसे देखनेकी साधना है।

शिविरमें सबसे बड़ी सहायता तो स्वयं आचार्य गोयन्काजीकी उपस्थितिके द्‌वारा थी। प्यार और करुणासे भरा हुआ उनका मानस संपूर्ण ध्यान-हालमें छाया रहता था। मुझे कभी-कभी यूं लगता था कि मेरे भीतर दुःखोंकी और सांसारिक कामनाओंकी एक पर एक परत उनके द्‌वारा उतारी जा रही है। इसी प्रकार सभी साधकोंके युद्‌धमें वे सहायक हो रहे हैं। जब-जब वे ध्यान-कक्षमें आते तो मुझे उनकी उर्जा की तरंगे स्पष्ट महसूस होतीं। उनके चले जानेके बाद भी यह तरंगे ध्यान-कक्षमें छायी रहतीं। जिस प्रकार वे सारे कक्ष को अपने तीक्ष्ण पर करुणाभरे नेत्रोंसे निहारते, उसे मैं अब भी याद करती हूँ। कभी नहीं भूल सकती। जैसे कि आचार्य ने कहा, सचमुच इतनेसे समयमें तो मैंने इस विद्‌याका एक बहुत छोटा सा अंश ही प्राप्त किया है। देखूंगी किस प्रकार यह मेरे जीवनको प्रभावित करती है और सुधारती है। मुझे यह पूर्णतया विश्वास हो गया है कि मैं इस साधना पद्‌धतिको अपने मानसिक विकास के लिए अपने जीवनका अंग बनाऊंगी।

शिविरके बाद इस बाहरी दुनियामें आने पर एक सप्ताह कितनी जल्दी बीत गया। मैं जब जब शिविरके उन दस दिनोंको याद करती हूँ तो मेरा हृदय स्वभावतः पिघल उठता है। मुझे अनागावाके शिविरके वे दस दिन भुलाए नहीं भूलते। लगता है सारे दुनियावी द्‌वन्दों, प्रतिबंधों और संघर्षोंसे परे वह एक स्वर्गका जीवन था।

आचार्यके ये शब्द मेरे मानस पर गहरे अंकित हो गए हैं– "शांत और सजग चित्त से, समता भरे चित्तसे काम करें, अनित्य है, दुःख है, अनात्म है। शील, समाधि, प्रज्ञा, धम्म, संखार, इत्यादि-इत्यादि।" मेरा मन कृतज्ञताके आभारसे भरा हुआ है कि मुझे श्री गोयन्काजीके निर्देशनमें विपश्यना साधना करनेका अवसर मिला। अनेक अनेक धन्यवाद!

मैं चाहती हूँ कि अधिक से अधिक लोग इस प्रकारके शिविरमें भाग लें। इस शिविरमें मुझे अनेक लोगोंने सब प्रकारकी सहायता की। मैं आशा करती हूँ कि मैं भी इसी प्रकार अनेकोंकी सहायता कर सकूँगी। यहाँ टोक्यो में क्योटोकी तरह कोई धम्मगृह नहीं है। अन्य साधकोंके साथ मिलकर मैं चाहती हूँ कि ऐसा एक धर्मगृह शीघ्र से शीघ्र यहाँ भी स्थापित हो। क्योटोका धर्मगृह हमेशा साधकोंसे भरा रहता है। ऐसे धर्मगृह स्थान-स्थान पर स्थापित होने चाहिए। टोक्योमें धर्मका विकास हो, यही मंगल कामना है।

कु. युको मोरीटा

जामसर/राजस्थान/ के डॉ. मोहम्मद आरिफ जोइया लिखते हैं, "हैदराबादके १४५ वें शिविरमें पहली बार भाग लिया। शरीरको साक्षी-भावसे देखा– आंखें बन्द करके और आंखें खोलकर भी। इस घटनासे आश्चर्य हुआ और आश्चर्य करनेवाले पर साक्षीभाव की तलवार भी चली। अहंकारभरा अज्ञान टूटा। इस जिंदा कब्रकी काली दीवारें और अंधी छतें निरन्तर गिरती जा रही हैं, गलती जा रही हैं। परीन्देका बच्चा अण्डेकी दीवारोंको तोड़कर रोशनीमें कदम रखता है तब वह किस मस्तीके आलममें होता है! यह अनुभव वह बच्चा ही कर पाता है। इंद्रियोंकी अपनी सीमा होती है। कैसे व्यक्त करें? उस समय वह बच्चा अपनी मां के प्रति क्या भाव रखता है? जिसने कि अण्डेको ऐसे जतन व लाड-दुलारसे सेया है। यह जाहिर करना भी इंद्रियों जैसी नश्वर चीजोंके वश की बात नहीं है। बस मां जानती है या भगवान!

शुद्ध धर्मकी पावन-गंगा प्राणी-मात्रके हृदयमें प्रविष्ट हो! समस्त साधकोंका श्रम फलीभूत हो! मेरा भी मंगल हो! सबका ही मंगल हो! यही धर्मकामना है।"

भावी कार्यक्रम

शि. क्र. दिनांक	संचालक
मदुराई	
BG २०. २१-११-८३ से १-१२-८३ तक	स. आ. डॉ. सावला
पुरी (उड़ीसा)	
LN ११ १६-१२-८३ से २६-१२-८३ तक	स. आ. श्री राठी
कलकत्ता	
RS ८. २४-११-८३ से ४-१२-८३	स. आ. श्री रामसिंह
बीरगंज (नेपाल)	
RS ९. ६-१२-८३ से १६-१२-८३ तक	स. आ. श्री रामसिंह

संपर्क :

मदुराई – श्री हीरजीभाई धरोड़. ८/१, एम. के. लेन,
पोस्ट बाक्स नं. ३२, मदुराई–६२५००१. (तामिळनाडू)
फोन. नं. २५४७९.

पुरी श्री सुदर्शन ढंढारिया,
४८-डी, मुक्ताराम बाबू स्ट्रीट, कलकत्ता-७००००७.
फोन – ३४४७९२/३४१३९३

कलकत्ता– विदर्शन शिक्षा केन्द्र, श्री मनसुखभाई दडिया
नं. १७, इजरा स्ट्रीट, कलकत्ता-७००००१.
फोन : नं. २६९४४५

बीरगंज १) *श्री द्वारकाप्रसाद सिकारिया, मर्केन्टाइल बिल्डिंग,
आदर्श नगर, बीरगंज (नेपाल) फोन : २२७४ / २७७४
*अथवा D. P. SIKARIA, पोस्ट बॉक्स नं. २४३८
काठमांडौ (नेपाल) फोन : १५७१५ (P. P.)
Cable– DEEPEE, KATHMANDU
२) श्री विश्वनाथ शाह, "मुरली" बीरगंज (नेपाल)
फोन : २२७३ / २७७३

सूचना :

१) कृपया साधना शिविर में शामिल होने से पूर्व शिविर–व्यवस्थापक के पास अपना नाम रजिष्टर करा लें। किसी कारणवश शिविर में सम्मिलित न हो सकते हों तो पर्याप्त समय रहते सूचित करें ताकि किसी अन्य प्रत्याशी को स्वीकृति दी जा सके।

२) शिविरों के नियम कड़े होते हैं उनका कड़ाई से पालन कर सकें तो ही भाग लेना चाहिए।

एक शुभेच्छु
की मंगल कामनाओं सहित

दूहा धरम रा

जद कानां रै द्वार पर, हुवै सब्द रो स्पर्स।
दुख-सुख संवेदन जगै, जगै सोक अर हर्स॥
जद आख्यां रै द्वार पर, हुवै रूप रो स्पर्स।
दुख-सुख संवेदन जगै, जगै सोक अर हर्स॥
जद नासां रै द्वारा पर, हुवै गंध रो स्पर्श।
दुख-सुख संवेदन जगै, जगै सोक अर हर्स॥
जद जिभ्या रै द्वारा पर, होवै रस रो स्पर्स।
दुख-सुख संवेदन जगै, जगै सोक अर हर्स॥
हुवे काया रै द्वार पर, व्यक्ति बस्तु रो स्पर्स।
दुख-सुख संवेदन जगै, जगै सोक अर हर्स॥
हुवे मानस रै द्वार पर, जद चिंतन रो स्पर्स।
दुख-सुख संवेदन जगै, जगै सोक अर हर्स॥

दोहे धर्म के

तन मन संवेदन जगे, जगे राग या द्वेष।
जगे दुक्ख पर दुक्ख ही, बढ़े क्लेश पर क्लेश॥
तन मन संवेदन जगे, जगे राग या द्वेष।
समतामय प्रज्ञा जगे, दूर होय दुख क्लेश॥
प्रिय से होवे राग या, अप्रिय से हो द्वेष।
नियम नियतिका अमिट है, होय क्लेश ही क्लेश॥
षट इंद्रिय के द्वार पर, स्पर्श विषय का होय।
ज्यों जागे संवेदना, साधक जागृत होय॥
देखत देखत देखते, चित समता स्थित होय।
संवेदन का रस छुटे, मुक्ति दुखों से होय॥
प्रज्ञा जागे बलवती, हो अनित्य का बोध।
होय इंद्रियातीत जब, होवे चित्त विशोध॥

सयाजी ऊ बा खिन मेमोरियल ट्रस्ट के लिए मुद्रक, प्रकाशक एवं संपादक : रामप्रताप यादव, ग्रीन हाउस, २ री मंजिल, ग्रीन स्ट्रीट, फोर्ट, बंबई–२३. टेलीफोन : ३१३५१०. ● मुद्रण स्थान : अक्षरचित्र मुद्रणालय, सातपूर, नासिक–४२२००७. टेलिफोन : ८८२५१. ● पत्रिका में विज्ञापन दर : आधा पृष्ठ रु. १०००/–, चौथाई पृष्ठ रु. ५००/– ● वार्षिक शुल्क रु. १०/–, आजीवन शुल्क रु. १००/-

विपश्यना" 10/83

Licence No. NS 18
Licensed to post without pre-payment

पो. रजि. नं NSM.16/83

प्रेषक :
सयाजी ऊ बा खिन मेमोरियल ट्रस्ट
विपश्यना विश्व विद्यापीठ
धम्मगिरि, इगतपुरी–४२२४०३.
(नासिक, महाराष्ट्र)

To